प्राप्ति स्थान

१–श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संस्कृति-रक्षक संघ
सैलाना मध्य-प्रदेश

२– " एकुन बिल्डिंग, पहली धोबी-तालाब लेन
बम्बई २

३– " सराफा बाजार जोधपुर राजस्थान

मूल्य १–00

प्रथमावृत्ति
२०००

वीर संवत् २५०६
विक्रम संवत् २०३७
चैत्र शु. १
१७–३–८०

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (म. प्र.)

प्रकाशकीय निवेदन

[illegible]

[illegible]

[illegible]

हितकारक होने पर आगे '[illegible]' पर [illegible] आगे बढ़ते हैं, इसी हेतु इस पुस्तक की रचना हुई।

सामान्य श्रावक धर्म का पालन तो कोई भी और किसी भी [illegible] का व्यक्ति बिना किसी बाधा के कर सकता है, चाहे वह धनवान हो, गरीब हो या निर्धन, व्यापारी हो, या नौकरी करने वाला [illegible] का संचालक हो, सुखपूर्वक कर सकता है, [illegible] धर्म में श्रद्धा—आस्था होना आवश्यक है। दृढ़ आस्था होने पर आगे के नियम यथाशक्ति पालन करने और अधिक पालन करने की भावना रखने से प्रगति होती रहती है।

सम्यग्दर्शन वर्ष ३० सन् १९७९ के आरंभ से यह पुस्तक लेखमाला के रूप में दिसंबर ८० तक प्रकाशित होती रही। इसकी उपयोगिता देखकर धर्मप्राण उदारमना श्रीमान् सेठ मिलापचन्दजी सा. बोहरा [illegible] निवासी ने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का अनुरोध किया और एक हजार पुस्तकें स्वयं लेने की भावना बताई। फलस्वरूप 'सामण्णसड्ढ धम्मो' पुस्तक प्रकाशित की गई। आशा है यह पुस्तक समाज के लिये अतीव उपयोगी होगी।

सैलाना
चैत्र शु. १ सं. २०३७
१७-३-८० —रतनलाल डोशी

सामण्ण सड्ढ-धम्मो

(सामान्य श्रावक धर्म)

मंगलाचरण—

(अनुष्टुप्)

नमिऊणं जिणवरिंदं, तिहुअणं सुर-अच्चियं ।
सिद्ध-साहुणि-पमुहं वंदे, अरिहाइ-गुणागरं ॥१॥

—समस्त जीवों के हितैषी, देवों के द्वारा पूजित, सिद्ध-गति के स्वामी, सम्यग्ज्ञान गुण के धारक अर्हत् और सद्गुरु को मैं [illegible] नमस्कार करता हूं ।

टिप्पण—'जिनेन्द्र' पद से (१) अपायापगमातिशय, 'सुर-अर्चित' पद से (२) पूजातिशय, 'सर्वज्ञ' पद से (३) ज्ञानातिशय और 'अरहंत' पद से (४) वचनातिशय का ग्रहण किया गया है ।

संखित्ता सुय-सायराउ, धोरणासि गुरुदत्त सम्मत्तं ।
सामण्ण-सड्ढ-धम्मो जो, वुच्छामि धम्मं तं ॥२॥

—[illegible]

सामान्य श्रावक की परिभाषा

जिणधम्माणुरागी वा, जाओ कुलंमि तंमि वा।
सत्त-वसण-चाई वा, सो हि सामण्ण-सावगो ॥३॥

—जो जिनधर्म का अनुरागी हो अथवा जो जिनधर्म के अनुरागी कुल में जन्मा हो अथवा जो सप्त-व्यसनों के त्यागी या कई व्यसनों का त्यागी हो, वह सामान्य श्रावक है।

टिप्पण—इस गाथा में श्रावक की परिभाषा के तीन विकल्प बतलाये हैं—

१ साधु-सन्त, श्रावक आदि के सत्संग से जो जिनधर्म का अनुरागी बना हो, जिसकी चर्या किंचित् शुद्ध हुई हो और जो नमोक्कार मंत्र का स्मरण करता हो, वह सामान्य श्रावक है।

२ जो जैनधर्म के अनुयायी कुल में जन्म लेने के कारण मद्य-मांस का त्यागी है और साधुओं की उपासना करता है, वह सामान्य श्रावक है।

३ जिसने साधु आदि के उपदेश को सुन कर, सातों कुव्यसनों (शिकार, द्यूत, मद्य, मांस, परस्त्री-गमन, वेश्या-गमन और चोरी) या कई कुव्यसनों का त्याग कर दिया है और जिनधर्म पर श्रद्धा रखता है, वह सामान्य श्रावक है।

सामान्य श्रावक के करणीय नियम

(काव्य)

मिच्छत्त-चाओ जिणधम्म-इच्छा, देवत्थुई वंदणयं गुरुस्स
मणोरहा धम्मुवदाण-सुद्धं, पहावणा संघ-सुहायरो य ।४।

(अनुष्टुप्)

साहम्मियस्स उद्धारो, काउस्सग्गो सुयस्सई ।
णमुक्कार-सहियं च, दिवस-चरिमं सया ।५।

आवस्सयं सामाइयं, [illegible] ।
इमाइं [illegible], [illegible] ॥६॥

१ सिद्धान्त का [illegible], २ [illegible], ३ [illegible], ४ [illegible], ५ [illegible], ६ [illegible], ७ [illegible], ८ [illegible], ९ [illegible], १० [illegible], ११ [illegible], १२ [illegible], १३ [illegible], १४ [illegible] और १५ [illegible] । [illegible] है ।

[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥७॥

[illegible] है ।

प्रथम कोष्ठ

([illegible])

सिद्धान्त की परिभाषा

[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥८॥

[illegible] है ।

टिप्पण—इस गाथा में मिथ्यात्व की व्याख्या के चार विकल्प किये हैं—

१ तत्त्वों में अनिश्चय, २ तत्त्वों में अतत्त्व रूप प्रतीति, ३ अतत्त्वों में श्रद्धा और ४ अतत्त्वों में तत्त्व रूप प्रतीति।

दूसरी रीति से इस गाथा में मिथ्यात्व के तीन रूप वर्णित हैं—१ यथा रूप प्रज्ञा के अभाव में तत्त्व का अनिर्णय, २ प्रज्ञा होने पर भी तत्त्व के निर्णय के अभाव में अतत्त्व के प्रति लगाव और ३ प्रज्ञा के द्वारा तत्त्व-निर्णय के नाम पर विपरीत-प्रतीति। अर्थात् तत्त्व का अनिर्णय, अतत्त्व-प्रीति और विपरीत निर्णय मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के भेद

(काव्य)

दुक्खस्स पुण्णे भव-वारि-मज्झे,
जेणं णिवुड्डा सययं हि जीवा।
सो सज्झओ साहणओ य मिस्सो,
मिच्छत्तभावो तिविहो पउत्तो ॥९॥

जिससे दुःख रूपी जल से परिपूर्ण भव-सागर में जीव सदा से डूबे हुए हैं, वह मिथ्यात्व भाव साध्य, साधन और तदुभय माध्यम से तीन प्रकार से प्रवृत्त होता है। अर्थात् मिथ्यात्व के तीन भेद हैं—साध्यगत, साधनगत और तदुभयगत।

टिप्पण—पद्य की सार बातें—१ संसार दुःख रूप है और दुःखानुभव का प्रधान हेतु मिथ्यात्व है। २ भव-परम्परा का कारण मिथ्यात्व है। ३ साध्य आदि को नहीं समझना मिथ्यात्व है।

[illegible] मिथ्यात्व

[illegible] आगम-विचार-मूढता,
[illegible] विनय-क्रिया [illegible] ।
कुलिङ्गिनो [illegible] ,
मिथ्यात्वं [illegible] ॥१०॥

[illegible] के विषय में आगम-विचार-मूढता, [illegible], विनय-हीनता, कुलिङ्गि [illegible] और शक्ति की अविद्यमानता—[illegible] मिथ्यात्व [illegible] हैं ।

[illegible] मिथ्यात्व [illegible] के [illegible] ।

१ आगम-विचार-मूढता—[illegible] के [illegible] के विषय में [illegible] ।

२ [illegible]—[illegible] के विषय में [illegible] ।

३ विनयहीनता—[illegible] ।

४ कुलिङ्ग—[illegible] ।

५ शक्ति की अविद्यमानता—[illegible] ।

साधनगत मिथ्यात्व

(अनुष्टुप्)

अत्तगयं परगयं, साहणं दुविहं मयं ।
अत्तगयं तु सब्भावा, देवो गुरु य धम्मयं ॥११॥

—साधन दो प्रकार के माने गए हैं आत्मगत और परगत। अपने उत्तम भाव (सम्यग्दर्शन आदि) आत्मगत साधन हैं और देव गुरु और धर्म परगत साधन हैं।

टिप्पण—आत्मा ही सिद्ध में परिणत होता है। इसलिये आत्मा में गुणों का आविर्भाव आत्मगत कारण है और गुणों के आविर्भाव में सहायक अरिहन्त देव आदि परगत साधन हैं। इन्हें क्रमशः उपादान और निमित्त कारण कहा जा सकता है। गाथा में 'य' शब्द के द्वारा धर्म को भी ग्रहण कर लिया गया है।

भावबुद्धी ण सब्भावे, दुब्भावे खलु सा भवे ।
ऊणा य अइरित्ता उ, साहणत्तेऽतहा मई ॥१२॥

उत्तम भावों = सम्यग्दर्शन, क्षमा, अहिंसा आदि में सद्भाव बुद्धि न हो—दुर्भाव बुद्धि हो, दुर्भाव मिथ्यात्व, क्रोध, हिंसा आदि में सद्भाव बुद्धि हो और उनकी साधनता—असाधनता में जिनोक्त भावों से कम या ज्यादा बुद्धि हो, तो वह साधनगत मिथ्यात्व है। अर्थात् साधनगत मिथ्यात्व के १ साधन-विपर्यय, २ न्यून-साधन-प्रतीति और ३ अधिक साधन प्रतीति—ये तीन रूप हैं।

तत्तभमं तु मिच्छत्तं परगयं तिभेयगं ।
लोउत्तरिय-लोइय-कुप्पावयणियं चए ॥१३॥

हे भगवन् ! [illegible] के [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] भेद [illegible] निक्षेप को [illegible]।

निक्षेप—इस [illegible] में [illegible], [illegible] निक्षेप के भेद बतलाये गये हैं। प्रत्येक भेद के भी [illegible] भेद होते हैं। [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] में [illegible] का [illegible] निक्षेप करते हैं। [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] 'दृष्टिवादकी [illegible]' और '[illegible]' [illegible] आदि। [illegible] [illegible] की [illegible] से ही [illegible] होते हैं। किन्तु [illegible] [illegible] आदि से [illegible] का [illegible] [illegible] जाता है। [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] से [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] हैं, [illegible] [illegible] [illegible] हैं [illegible] के [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] हैं [illegible] [illegible] के [illegible] की [illegible] [illegible] निक्षेप है। [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] का [illegible]—[illegible] [illegible] और [illegible] निक्षेप है।

[illegible] निक्षेप

(मूल)

[illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible]

(सुदेव-सुगुरु और सुधर्म) [illegible]
मानना, उस प्रकार की [illegible] किया [illegible]
है, वह [illegible] मिथ्यात्व है।

टिप्पण—इस पद्य में मिथ्या-मिथ्यात्व के चार रूप बताये गये हैं—१ सद्गुरुओं से [illegible] मानना, २ शुद्ध [illegible] मानना, ३ कुमतियों से [illegible] और ४ अशुद्ध [illegible] मानना। प्रत्येक के मानना (श्रद्धा) और आराधना [illegible] हैं।

मिथ्यात्व का त्याग

सपंजलीहिं विणएण जुत्तो,
समुट्ठिओ णं गुरु-पाय-मूले।
मिच्छत्तभावस्स करेज्ज चायं,
संतो कयण्णो य तिजोगसुद्धो ॥१५॥

शांत कृतज्ञ और तीनों योगों से शुद्ध बन कर, विनय सहित हाथ जोड़ कर और गुरुदेव के चरणों में खड़ा रह कर मिथ्यात्व भाव का त्याग करे।

टिप्पण—इस पद्य में मिथ्यात्व के त्याग की प्रतिज्ञा लेने की विधि बतलाई गई है। यथा—१ अहंकार का त्याग करके गुरुदेव के समीप जाना २ दोनों हाथ जोड़ना और उन्हें मस्तक से लगाना, ३ मस्तक झुकाना, ४ मनःशुद्धि—गुरुदेव और प्रतिज्ञा के प्रति बहुमान रखना, ५ कायशुद्धि—अन्य क्रियाओं को छोड़ कर पंचांग झुका कर वंदना करना, फिर ६ विनय सहित गुरुदेव के चरण कमलों में खड़े रहना, ७ वचनशुद्धि—गुरुदेव से प्रतिज्ञा की याचना करना, ८ मिथ्यात्व का त्याग करना अर्थात् प्रतिज्ञा के वचनों का उच्चारण करना, ९ प्रतिज्ञा के बाद गुरुदेव के प्रति कृत

[illegible] (दो हाथ की [illegible] और [illegible]) [illegible] और [illegible] होना [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ।

मिथ्यात्व के त्याग का फल

(अनुष्टुप्)

[illegible] ,
[illegible] ॥१८॥

—[illegible] [illegible] [illegible] ।

[illegible] है ।

अप्रमाद का प्रसङ्ग

([illegible])

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥[illegible]॥

[illegible] [illegible]

बार-बार हर्ष धारण करे और जन्म को कृतार्थ और सफल माने।

चिन्तन—इस पद में मिथ्यात्व के त्याग में जागरूकता के लिये करणीय कुछ क्रियाएँ बतलाई गई हैं। यथा—१ सद्ग्रन्थों के अध्ययन से मिथ्यात्व के द्वारा होने वाली दोष-परम्परा की और मिथ्यात्व के बुरे फलों की जानकारी करना, २ बार-बार उनका चिन्तन करना, ३ मिथ्यात्व-त्याग के संकल्प को दूषित करने वाले अतिचारों का पुनः-पुनः चिन्तन करते हुए उनसे बचना, ४ संकल्प-शुद्धि की भावना करना, ५ 'मैंने मिथ्यात्व का त्याग कर लिया है'—यह सोच कर प्रसन्न होना और ६ बार-बार हर्ष को धारण करना तथा ७ 'मिथ्यात्व का त्याग कर लेने के कारण मेरा जन्म कृतार्थ हो गया—सफल हो गया'—यह बार-बार सोचते रहना।

द्वितीय बोल

(जिनधर्म-प्रीति)

किसका शरण है ?

(अनुष्टुप्)

विविहा धम्मऽहिप्पाया, विरुद्धा वि परोप्परा।
णियम्मि वि विरुद्धा ते, कस्स मे सरणं जगे ॥१८॥

(मुमुक्षु जीव पुकार करता है—) जगत् में धर्म के विषय में भाँति-भाँति के अभिप्राय हैं। वे परस्पर विरुद्ध भी हैं अरे! वे अपने-आपमें भी विरुद्ध हैं। ऐसी स्थिति में मुझे किसका शरण है ?

धन्य है वह

जिणिंद-धम्मो हि जगे अवीओ,
सच्चेव सच्चो स हि मोक्खमग्गो।

जो दुतियो अलिन्दु मंदिरवारो,
[illegible] ॥१५॥

[illegible]

[illegible]

कैसे जाना है ?

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥१६॥

[illegible]

श्रद्धा के हेतु

वत्तू अणंता वि ण तो विवाया,
दोसा कसाया ण हि किंचि तेसु ।
वाया तउत्ते सरिया व जंति,
कम्हा ण सद्धं पकरेज्जिणस्स ॥२१॥

(मुमुक्षु को समाधान प्राप्त होता है—) इस निर्ग्रंथ-प्रवचन के अनन्त वक्ता होने पर भी इसमें परस्पर किसी प्रकार का विरोध नहीं आता है। क्योंकि उन वक्ताओं में हिंसादि दोष और कषाय रूपी कालिमा किंचित् मात्र भी नहीं है और उन महापुरुषों के प्रवचन रूपी सागर में सभी वाद नदियों के समान मिल जाते हैं। फिर किस कारण से इस निर्ग्रंथ-प्रवचन की श्रद्धा नहीं करते हो ?

अपनी भी बुद्धि है

अम्हे हु सच्चत्ति कहेन्ति सव्वे,
सच्चं परं किं ण ममाण बुद्धी ।
वरं कहेंतस्स सअस्स वत्थुं,
कीणिज्ज को तं वय पूइगंधं ॥२२॥

'हम ही सच्चे हैं'—सभी यही कहते हैं—यह सत्य है। किन्तु हमारी बुद्धि नहीं है क्या ? अपनी वस्तु को अच्छी बतलाने वाले की उस सड़ी हुई और दुर्गन्ध से युक्त वस्तु को, कहो, कौन खरीदेगा ?

आत्मा ही कर्ता है

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अतः आत्मा नित्य है

[illegible]

[illegible]

भत्तिं सद्धं तम्मि हु पत्तियं च,
तिव्वं करेज्जा क्किर एस कज्जो ॥२४॥

—निश्चय ही जिसकी सेवा भव-भ्रमण को मिटाने वाली है, सुरक्षा करने वाली है और पाप रूपी रोग को हरने वाली है, उसी निर्ग्रंथ-प्रवचन में ही तीव्र रूप से भक्ति (श्रद्धा) रुचि और प्रतीति करो और निश्चय ही यही करना योग्य है।

टिप्पण—अहेतुगम्य भावों की श्रद्धा, सर्वज्ञोक्त क्रियानुष्ठान की रुचि और तर्क-साध्य भावों की प्रतीति करना योग्य है।

श्रद्धा-पोषिका भावना का अभ्यास

(अनुष्टुप)

सव्वाणुट्ठाण-मूलं हु, इमं कुज्जा सुभावणं ।
'सच्चं तमेव नीसंकं, जं जिणेहि पवेइयं' ॥२५॥

सभी धर्म-अनुष्ठानों की मूल रूप निम्नलिखित इस उत्तम भावना का सदा अभ्यास करो—'वही सत्य है—शंका से रहित है, जो राग-द्वेष से रहित आत्माओं ने कहा है।'

धर्म-प्रीति सदा रहे

(आर्या)

जिणणाह-धम्म-पीई, समत्त-सुह-इड्ढि-दाइणी सुद्धा ।
वासं करेज्ज णिच्चं, माणस-कमलंमि लच्छिव्व ॥२६॥

(मुमुक्षु आत्मा भावना करता है—उपर्युक्त भावना के अभ्यास आदि से) हृदय-कमल में, लक्ष्मी के समान समस्त सुख और ऋद्धि को प्रदान करने वाली जिनेन्द्र देव के धर्म की

[illegible] ।

[illegible] ।
[illegible] ॥१५॥

[illegible] ।

[illegible] स्तोत्र

([illegible])

([illegible])

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥१६॥

[illegible] ।

([illegible])

[illegible],
[illegible] ।

तिकाल-संझा-सरणिज्जओ तं,
पच्चूस-कालंमि सरे अवस्सं ॥२९॥

देवों के पूज्य, तीन लोक के नाथ अरिहन्त भगवान् जिननाथ ही आराध्य देव हैं। वे तीनों सन्ध्याओं में स्मरण करने योग्य हैं। प्रभात काल में उनका स्मरण अवश्य करना चाहिये।

(अनुष्टुप्)

स-हिअयंमि कुव्वेज्जा, जिण-णाहस्स अच्चणं
पइदिणं हि तिक्खुत्तो, असक्के चेअ वा सइं ।३०।

अपने हृदय में जिननाथ की अर्चना प्रतिदिन तीन बार करे। यदि यह अशक्य हो तो एक बार अवश्य करे अर्थात् जिनेन्द्र देव का स्मरण त्रिकाल न हो सके तो एक बार तो करना ही चाहिये।

स्तव और पूजा

दव्व-भावाण भेएण, आहिओ दुविहो थवो।
होइ पूया वि सो चेव, सहरिसो करेज्ज तं ।३१।

—द्रव्य और भाव के भेद से स्तव दो प्रकार का कहा गया है और वही पूजा है। इसलिये सहर्ष स्तव (पूजा) करना चाहिये।

टिप्पण—द्रव्य-स्तव और भाव-स्तव—इन प्रत्येक के दो-दो अर्थ होते हैं। द्रव्यस्तव—आराध्य के द्रव्य = शरीर, अतिशय, यश आदि की प्रशंसा या आराध्य की द्रव्य = वचन आदि के द्वारा स्तुति। भावस्तव—आराध्य के भाव = ज्ञानादि गुणों की स्तुति या आराध्य की भाव के द्वारा स्तुति। यहाँ दूसरा अर्थ ग्राह्य है।

[illegible]

([illegible])

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] !
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible] ! [illegible] है [illegible] है ।

[illegible] है । [illegible] है ।

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥

[illegible] है ।

[illegible]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥

ज्ञानादि का [illegible] करने वाले किसी भी भाषा में अथवा प्राकृत (णमोत्थुणं के पाठ) से या [illegible], किसी आदि भाषाओं के स्तोत्र-स्तुतियों से [illegible] अपने घर या मन्दिर में पहले जिनपूजा करें।

नियम-विधान

अहवुग्गयसूरंमि, कुज्जा सिद्धाण-संथवं।
सूरत्थमण कालंमि, तित्थेस-थुइ-मंगलं ॥३५॥

अथवा सूर्योदय के समय सिद्ध भगवंतों की स्तुति करें और सूर्यास्त के समय चौबीस तीर्थंकर भगवंतों का स्तुति-मंगल करें।

(टिप्पण—प्रातःकाल में 'णमोत्थुणं' का पाठ और सायंकाल में 'लोगस्स' का पाठ स्मरण करें।

चतुर्थ बोल

(गुरु-वंदना)

गुरु का महान् उपकार

(काव्य)

महोवयारो हि सम्मत्त-दाइणो,
जिणिंद-धम्मंमि सयकज्ज-कारिणो।
अणं महं तस्स अम्हाण सीसए,
नमिज्ज तं देवयं चेइयं गुरुं ॥३६॥

हमें सम्यक्त्व प्रदान करने वाले और जिनेन्द्र देव द्वारा उपदिष्ट धर्म में उत्तम धर्म-क्रियाएँ—व्रतादि करवाने वाले गुरु का हम पर महान् उपकार है। उनका हमारे

[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

एवं विणिदु जाणिऊणं, [illegible] गुरुणं ति ।३९।

[illegible] गुरुणियों का [illegible]

[illegible]

[illegible] समझना चाहिये ।

ग्रामस्थित गुरुणी को वन्दना

साहू वा साहुणीओ वा, भुंजंति स-पुरं जया ।
वंदिज्जा ते तयाऽवस्सं, सद्धीए सुत्ताए सया ।४०।

कोई साधु या साध्वियाँ जब अपने पुर को शोभित कर रही हों, तब उन गुरुणियों को सदा जबतक वे विराजें तबतक प्रतिदिन एक बार भी वन्दना अवश्य करें अर्थात् उनके दर्शन करें ।

पंचम बोल

(मनोरथ-चिन्तन)

(काव्य)

लोयंसि अस्सि तु अणंत-भावा,
तम्हा अणंता य मणोरहा वि ।
तत्तो विमोक्खाय करेज्ज सुद्धे,
तित्थेस-वुत्ते ति-मणोरहे हु ।।४१।।

इस लोक में अनन्त पदार्थ हैं । इस कारण जीव के मनोरथों का भी कोई अन्त नहीं है । उन विकल्पों के जाल से छूटने के लिये, भगवान् तीर्थंकर प्रभु के द्वारा कथित शुद्ध तीन मनोरथों का अवश्य सेवन करो ।

(अनुष्टुप्)

[illegible] ।
[illegible] ॥४८॥ (?)

[illegible]

पदस्था मनोरमा (?)

(आर्या)

[illegible] ।
[illegible] ॥४९॥ (?)

[illegible]

(अनुष्टुप्)

[illegible] ।
[illegible] ॥५०॥ (?)

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ॥२०॥

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ॥२१॥

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ॥२२॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] ।

[illegible]

[illegible] ॥
[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

([illegible])

[illegible] ।
[illegible] ॥

[illegible]

सकता है, तो काल का भय कैसे हो सकता है ?'

निच्छिऊण तहा कालं, न खणंपि पमायए ।
आराहणाइ उज्जुत्तो, संलेहणं वरं करे ।६७।

इस प्रकार पारलौकिक भाव का चिन्तन करके क्षण मात्र भी प्रमाद न करे । अन्तिम आराधना में तत्पर होकर श्रेष्ठ संलेखना करे (अर्थात् अन्तिम आराधना की नित्य भावना करे)

(क्रमशः)

[illegible]

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं ।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्मत्तं ॥२९॥
नादंसणिस्स नाणं,
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥३०॥
निस्संकिय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य,
उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥३१॥

[illegible]

[illegible] और [illegible] ?

[illegible] ।
[illegible] ॥०॥

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥१॥

[illegible],
[illegible] ॥२॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ ३० ॥

[illegible]

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥ ३१ ॥

[illegible]

[illegible] सर्ग

([illegible])

[illegible],
[illegible] ।
[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥४८॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥४९॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥५०॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥५१॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥५२॥

[illegible]

दीप-प्रज्वालन

(द्रुत विलम्बित)

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥१॥

[illegible]

(अनुष्टुप्)

[illegible] ।
[illegible] ॥२॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]-स्थापना

[illegible] ।
[illegible] ॥३॥

[illegible]

[illegible] ॥१९,८॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥१४,१॥

[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥१०॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सम्यक् श्रुत तीर्थ का मूल है और गुण-समूह का प्रकाशक है। जो ऐसे सम्यक् श्रुत के ज्ञान और दान के द्वारा धर्म का प्रभाव बढ़ाता है, वह धन्य है।

धम्मं सयं पभावेज्जा, वक्खाण-पाढणेहि वा।
पयारगे पढावित्ता, पेसित्ता जत्थ-तत्थहि ।१०२।

व्याख्यान और धर्म-शास्त्र के अध्यापन से स्वयं धर्म की प्रभावना करे और प्रचारकों को सैद्धान्तिक ज्ञान पढ़वा कर और जहाँ-तहाँ (देश-विदेश में) भेज कर, दूसरों से प्रभावना करवाये।

गुण-आदर से प्रभावना

आयरणं गुणाणंति, जिणवरस्स सासणं।
मण-वय-कियाहि ता, सम्माणं गुणिणो करे॥१०३॥

'गुणों का आदर करना अथवा गुणों का आचरण करना'-यह जिनेश्वर देव का शासन (उपदेश) है। इसलिये मन, वचन और क्रिया से गुणीजन का सम्मान करें।

(काव्य)

भवेइ कित्ती जिण-सासणस्स,
धम्मे सुही होइ गुणी विसण्णो।
संबोहिबीयं सुववेइ अप्पा,
गुणीण सम्माण-समायरेणं ॥१०४॥

गुणियों का सम्मान करने से जिनशासन की कीर्ति होती

है (जिसी [illegible] है या [illegible] के [illegible]) [illegible] [illegible] = [illegible] का [illegible]
[illegible], [illegible] है [illegible] और [illegible] [illegible] है।
[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] [illegible] ॥१०७॥

[illegible] [illegible] है [illegible] और [illegible] है [illegible] है। [illegible] [illegible] है [illegible] है और [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] है।

[illegible] [illegible]

([illegible])

[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ।
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥१०८॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मणेण उ णिमित्तेण, झाण-संकप्पएहि य ।
जा जस्स अत्थि ताए य, जए धम्म-पहावणं ।१०७।

मन से होने वाला चमत्कार अष्टांग निमित्त, ध्यान और संकल्प से होता है। इस प्रकार जिसके पास जो भी चमत्कारी विद्या है, उससे वह धर्म की प्रभावना में यत्न करे।

टिप्पण—ज्योतिष, सामुद्रिक आदि और आधुनिक अक्षरविद्या, अंकविद्या आदि निमित्त में, योग से प्राप्त विभूतियाँ, लब्धियाँ आदि ध्यान में और हिप्नाटिज्म, इन्द्रजाल आदि संकल्प में गर्भित हैं।

ललिया उवओगी य, कला वि विवहा पुणो ।
चित्त-लेहण-संगीय-सिप्पाइं पढमा कला ॥१०८॥

कलाविद्या के भी ललित और उपयोगी—अनेक भेद हैं। चित्रकला, लेखनकला, संगीतकला, शिल्पकला आदि कई प्रकार की ललितकला है।

टिप्पण—लिपि, काव्य, कथा, कहानी, उपन्यास आदि लेखनकला के अनेक भेद-प्रभेद हैं।

वत्थु-विज्जय-माई य, बीयं जाणिज्ज वा कलं ।
जा उचिया उ ताहि च, कुज्जा धम्म-पहावणं ।१०९।

वास्तुकला, वैद्यक (चिकित्सा) आदि दूसरी उपयोगी कला के कई भेद हैं। जो कलाएँ धर्मक्षेत्र के योग्य हों, उन-उन कलाओं से धर्म की प्रभावना करे।

तपादि-प्रभावना

तवं वयं स-सत्तीए, दीहं करेइ सोहणं ।
धम्म-पभावगं गंथं, वियरइ पयासइ ॥११०॥

[illegible]

[illegible] आदि

[illegible]

[illegible]

[illegible]

मधे गुणगानि किहें मदमा,
नाहिन संतो कहियो मनो ॥ ११॥

[illegible]

(दोहा)

[illegible]

[illegible]

ओमाण-भावं न करे समाणाणं,
चत्तारिणासायणयं निवारणिया ॥११९॥

१ संघ की निंदा नहीं करे, और यदि कोई निंदा करता हो तो उसका निवारण करे। २ संघ में फूट नहीं फैलाए, यदि हो गई हो तो उसे दूर करे। ३ संघ का तिरस्कार नहीं करे और ४ परस्पर क्षमापना करे—यह संघ की चार प्रकार की अनाशातना भक्ति है। इन्हें अच्छी तरह से जानकर करना चाहिये।

वैनयिका भक्ति

संघस्स कुज्जा अहिवायणं वा,
धम्मस्स कज्जे मुहयं च दिज्जा।
सेवं करेज्जा गुण-कित्तणं च,
चउव्विहा वेणइया य भत्ती ॥१२०॥

१ चतुर्विध संघ का अभिवादन करे या उसे वंदना करे। २ धर्म के कार्य में संघ को प्रमुखता दे। ३ चतुर्विध संघ की सेवा करे और ४ संघ का गुण-कीर्तन करे। यह संघ की चतुर्विध वैनयिका भक्ति है।

विघ्नोपशामिका भक्ति

संघस्स विग्घाणि सओहरेज्जा,
रक्खेज्ज सत्तं सयलं च सारं।

[illegible],
[illegible] ॥२॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible],
[illegible] ॥३॥

[illegible]

[illegible],
[illegible] ।
[illegible],
[illegible] ॥४॥

[illegible]

[illegible] भी [illegible] होता है। अतः [illegible] को [illegible] सहायक होना चाहिए। क्योंकि [illegible] से [illegible] सिद्धि होती है।

पावोदएणं दुहिया हु जीवा,
खोवेंति धिज्जं दढधम्मिणो वि ।
चत्ता गुणे ते विहुरा अभावा,
अभावयं किं न करेइ पावं ॥१२४॥

संसार में जीव पाप के उदय से निश्चय ही दुःखी हैं। दृढधर्मी भी दुःख में अपना धैर्य खो देते हैं। वे अभाव के कारण गुणों को छोड़ कर विह्वल हो जाते हैं। अभाव वाला व्यक्ति क्या-क्या पाप नहीं करता है ?

धण्णोऽसि पुण्णो जिणधम्मवं जो,
दुक्खो वि धण्णो गुणवं सधम्मे ।
परिग्गहत्तं चइऊण वित्तं,
वच्छल्लएणं सहलं करेसु ॥१२५॥

हे लक्ष्मीवल्लभ ! जो तुम भौतिक पदार्थों से पूर्ण होते हुए भी जिनेश्वर देव के अनुयायी हो, तो तुम धन्य हो और वह भी धन्य है, जो दुःखी होते हुए भी सद्धर्म में गुणों का धारक है। अतः तुम परिग्रह-भावना को छोड़ कर, साधर्मी के लिये वात्सल्य भरे कार्य के द्वारा अपने धन को सफल करो। अर्थात् धन्य व्यक्ति की धन्यता को टिकाने के लिये, जो हेय वस्तु छूट कर या खर्च होकर कुछ फलप्रद नहीं होने वाली है,

[illegible] ॥

[illegible] श्लोक

([illegible])

([illegible])

[illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible]

[illegible] ।

[illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible] ॥

[illegible] ।

[illegible] निरुद्ध[illegible] ॥

[illegible], [illegible] ॥१२९॥

[illegible] (शरीर की [illegible] को [illegible] करने के लिए) [illegible] करता जाता है और [illegible] को शक्तियों का [illegible] करता जाता है।

पाणापाणस्स सासाहि, जाव ठिईए करेज्ज तं।

काउस्सग्गं सया धीरो, सरीरप्पा-विभेयगं ॥१३०॥

धीर पुरुष (धैर्य सहित) प्राणापान श्वासोच्छ्वास से लेकर, जहाँ तक स्थिरता रह सके वहाँ तक देह और आत्मा की भिन्नता का अनुभव कराने वाला कायोत्सर्ग सदा करे।

णमोक्कारेण लोगस्स-सुत्तेण वा जहक्कमं।

काउस्सग्गं तिगिच्छं वा, वणस्सधिइमं करे ॥१३१॥

धैर्यवान् नमस्कारमंत्र अथवा 'लोगस्स' सूत्र के माध्यम से यथाक्रम कर्मरूपी घाव चिकित्सा के समान कायोत्सर्ग करे।

टिप्पण– १ श्वासोच्छ्वास की गिनती के दो माध्यम हैं—नमोक्कार मंत्र और २ चतुर्विंशतिस्तव सूत्र। नमोक्कारमंत्र का एक-एक पद प्रत्येक श्वास पर गिनने पर पांच श्वासोच्छ्वास होते हैं और लोगस्स सूत्र की प्रत्येक गाथा के प्रत्येक चरण प्रत्येक श्वास पर गिनने पर 'चंदेसु निम्मल-यरा' तक पच्चीस श्वासोच्छ्वास होते हैं।

२ यथाक्रम अर्थात् २५ या ५० या १०० या ५०० या १००० श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करना। जहां तक श्वासोच्छ्वास की नियत संख्या पूरी न हो, वहां तक पाठ की पुनः-पुनः आवृत्ति करते रहना चाहिये।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

४ नासिका-द्वार पर दृष्टि-पात के लिये ये श्वासोच्छ्वास बहता है। अतः वहाँ निरीक्षण करना। श्वास न रोकना, न बढ़ाना पर सहज भाव से चलने देना और उसके बाहर आते-जाते समय पलों का मानसिक चिन्तन करते जाना।

५ अप्रमत्तता—इस प्रकार की प्रक्रिया से निद्रा आने की सम्भावना रहती है। अतः सावधान रहना। यदि आँखें बंद न कर के, नासिका के अग्रभाग पर या किसी पुद्गल पर उन्हें स्थिर किया जाय तो अप्रमत्तता अच्छी रह सकती है।

एकादश बोल

(श्रुत-स्तुति)

(अनुष्टुप्)

जिणिंद-वुत्तं गण-णाह-दिन्नं,
सुयं हि धम्मस्स पगासगं च।
उप्पायगं वुड्ढिकरं हिअस्स,
अहिज्झए जाव सरीर-भेए ॥१३४॥

जिनेन्द्र देव के द्वारा कहे गये, गणधरों के द्वारा दिये गये, धर्म के स्वरूप को स्पष्ट रूप से प्रकट करने वाले, हित के उत्पन्न करने वाले और वृद्धि करने वाले श्रुत का देह के छूटने तक अध्ययन करे। अर्थात् सूत्र को कण्ठस्थ करना चाहिये।

पयास-थंभो भव-सायरे जं,
जस्सि पउत्ता तहिया हि भावा।
णिरुंभिउं अत्त-विहाव-चक्कं,
सुयं पढे तं थिर-माणसेणं।१३५।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

२ पृच्छना-शंका का समाधान करना, ३ परिवर्तना-सूत्र की आवृत्ति करना ४ अनुप्रेक्षा-अर्थ का चिन्तन करना और ५ धर्मकथा । उपर्युक्त गाथा में परिवर्तना-स्वाध्याय का निर्देश है ।

अत्थं सुत्तस्स चिंतिज्जा, हिअयंमि पुणो पुणो ।
जेणं च कम्म गंठीओ, भिंदिज्जा खलु अप्पणो ॥

सूत्र के अर्थ का हृदय में बार-बार चिंतन करें । जिससे अपनी कर्म-ग्रन्थियाँ मिट जायें ।

टिप्पण—इस गाथा में स्वाध्याय के चौथे भेद अनुप्रेक्षा करने का कह कर, उसका फल बतलाया गया है । अनुप्रेक्षा से कर्म-निर्जरा अधिक होती है ।

पवयणस्स मायाए णाणं करे खु एत्तियं ।
अणाणुपुव्वि-णोक्कारं, गुणे वाट्ठुत्तरं सयं ।१३९।

अष्ट प्रवचनमाता (पांच समिति-तीन गुप्ति) का ज्ञान जघन्य ज्ञान है । कम से कम इतना ज्ञान अवश्य करे । (यदि नित्य प्रति या कभी स्वाध्याय नहीं हो सके तो) अनानुपूर्वी से नमोक्कार मंत्र या एक सौ आठ वार नमोक्कार मंत्र अवश्य गिनें ।

(काव्य)

आवस्सएणं णिय-धम्म-कज्जं,
पच्चीस-वोलेण य धम्म-तत्तं ।
वीरत्थुईए खलु देव-तत्तं,
णमिप्पवज्जाइ मुणेज्ज मग्गं ॥१४०॥

'आवश्यक सूत्र' से अपने धर्मकर्त्तव्यों को, पच्चीस वोल

1

नारइए नरगंमि, कम्मं खवेइ जित्तियं ।
तं नमुक्कार-सहिएण, खवेइ तित्तियं खलु ॥१४४॥

जीव नरक में पीड़ा भोग कर भी वर्षों में जितने कर्मों का क्षय करता है, मनुष्य उतने कर्मों को 'नमुक्कारसहित' प्रत्याख्यान से क्षय कर देता है। अर्थात् ज्ञानी ज्ञानबल से स्वेच्छा से अल्प पुरुषार्थ कर के, बहुत-से कर्मों का नाश कर सकता है।

त्रयोदश बोल

(दिवस चरिम-प्रत्याख्यान)

(काव्य)

सूरत्थ-कालाउ मुहुत्त-पुव्वे,
आहार-चायं तु करेसु भव्व ।
ण रत्ति भुत्ती किर सावगस्स,
कयावि जुत्ता बहु-दोसवंती ॥१४५॥

हे भव्य ! सूर्यास्त से एक मुहूर्त के पहले से आहार का त्याग करो। रात्रि-भोजन बहुत दोषों से भरा है। इसलिये श्रावक को रात्रि-भोजन कभी नहीं करना चाहिये।

(आर्या)

दिवसंतिमे मुहुत्ते, जं आहारस्स वज्जणं तं तु ।
दिवस-चरिमं जिणेहिं, पच्चक्खाणं हि पण्णत्तं ।१४६।

दिवस के अन्तिम मुहूर्त में जो आहार का त्याग किया जाता है, उसे जिनेश्वर देव ने 'दिवसचरिम' नाम का प्रत्याख्यान कहा है।

है। और (दूध, पानी, मुखवास के सिवाय या खाने की मिठाई, दूध आदि के सिवाय रात्रि-भोजन के त्याग आदि) भी कई भेद प्रचलित हैं। श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार प्रत्याख्यान करता है।

रत्ति-भोयण-चाएण, सुट्ठु होइ वहुं फलं।
अणायासेण मासंमि, पक्खोववासयं फलं ॥१५०॥

रात्रिभोजन का त्याग करने से बहुत श्रेष्ठ फल मिलता है। बिना किसी श्रम के सहज में ही एक महिने में एक पक्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।

टिप्पण—रात्रि-भोजन से आध्यात्मिक हानि तो है ही। परन्तु शारीरिक दृष्टि से भी हानि होती है।

चतुर्दश बोल

(आवश्यक)

आवस्सएसु कालो उ, जस्स वि जो हु तम्मि य।
भत्तिजुत्तो करेज्जा तं, सहरिसो सुसावगो।१५१।

उत्तम श्रद्धालु श्रावक आवश्यकक्रियाओं में, जिस भी क्रिया का जो काल हो, उस काल में उस क्रिया को हर्ष और भक्ति से भरपूर होकर करता है।

टिप्पण—आवश्यक क्रियाएँ छह हैं—१ सामायिक २ चतुर्विंशतिस्तव, ३ वंदना, ४ प्रतिक्रमण ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान। इनमें से दूसरे, तीसरे, और पांचवें आवश्यक का विधान तीसरे, चौथे और दशवें बोल में हो चुका है और छठे आवश्यक का १२ वें १३ वें और १५ वें बोल में कुछ विधान है। शेष दो आवश्यक सामायिक और प्रतिक्रमण का इस बोल में विधान किया गया है।

जोर के लिये) निरन्तर ही मोक्षमार्ग [illegible] है।

प्रतिक्रमण

नासगं जं पमायस्स, मोक्ख-मग्गस्स तारगं।
करणिज्जं दुसंझाए, आवस्सयं चउत्थयं।१५५।

जो प्रमाद को नष्ट करने वाला है और जो मोक्षमार्ग को निष्कंटक श्रेष्ठ या निकट बनाने वाला है, वह चौथा प्रतिक्रमण प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सन्ध्याओं में करना चाहिये।

(काव्य)

गुणाण रूवं सरिऊण जीवो,
आलोयणं जोगगईइ किच्चा।
जा वक्कया वारइ तं गुणंमि,
दोसं कयं तं अफलं सरित्ता ॥१५६॥

जीव गुणों के स्वरूप का स्मरण करके, अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया की गति का निरीक्षण करता है। वह गुणों से दूर जाने रूप जो योग की वक्रता है, या गुणों में जो दोष लगाया है, 'वे निष्फल हों'—उन्हें इस रूप में स्मरण करके, योगवक्रता को गुणों में मोड़ देता है (यह प्रतिक्रमण है)।

(अनुष्टुप्)

पुणोऽकरणवित्तीए, धरणं तु दढं मणे।
तं पडिक्कमणं होइ, साहुणाए विसोहणं।१५७।

(अपने दुष्कृतों की निन्दना की भावना से) व्रतों के छिद्र (अतिचार) बंद हो जाते हैं और व्रतों की शुद्धि होती है।

पंचदश बोल

(दीक्षा हेतु नियम)

दीक्षा प्रयोगशाला है

(कारण)

दिक्खा हु अज्झत्त-पयोग-साला,
जाए गुणी साहग-अप्पमत्तो।
जीवस्स देहस्स य जो सिलेसो,
अच्चंतियं भंजइ तं सुही सो ॥१६

दीक्षा अर्थात् साधुत्व को ग्रहण करना—अ: प्रयोगशाला है। जिसमें मूलोत्तर गुण को धारण क: प्रमाद से रहित सावधान वह साधक सुखानुभव क: जो जीव और देह का एकत्व रूप अनादिकालीन च: बंधन चल रहा है, उसे आत्यन्तिक रूप से = सदा तोड़ता है, वह उस श्लेप को तोड़ कर शाश्वत् सुख करता है।

लक्ष्य-हेतु त्याग की प्रतिज्ञा

कया अहं संजम-जोगयं तं,
सुद्धं गहिस्सामि सिवो भविस्सं।
ण जाव दिक्खं लहिहामि ताव,
जं किंचि वत्थं हि

पसत्थी
(प्रशस्ती)

सासणे पहुवीरस्स, धम्मदासो मुणीसरो ।
आयरिओ सिरीमंतो, होत्थु धम्म-धुरंधरो ॥१६६॥

अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर प्रभु के शासन में मुनियों में प्रधान श्री धर्मदासजी महाराज हो गये हैं। वे ज्ञानादि रत्नत्रयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न आचार्य-प्रवर थे। और वे धर्म की धुरा को धारण करने वाले थे।

तस्सीस-हरिदासस्स, अण्णये वि मुणीवरा ।
तवस्सी पढिया केइ, वत्तारा मुणि-पुंगवा ॥१६७॥

उनके कई विशिष्ट शिष्यों में एक श्री हरिदासजी नाम के मुनि भी थे। उनकी शिष्य-परम्परा में भी श्रेष्ठ मुनिराज हुए हैं। मुनियों में प्रधान कई तपस्वी थे, कई विद्वान थे और कई उत्तम वक्ता मुनिराज थे।

तेसिं पुज्जवरो सेट्ठो, णंदलाल-महामुणी ।
चाई लज्जू णिरावेक्खो, परीसह-चमू-जई ॥१६८॥

उनमें एक पूज्यवर श्री नन्दलालजी महाराज थे। वे श्रेष्ठ व्रती और महामुनि थे। उनकी त्यागवृत्ति महान् थी। वे संयमी के योग्य विशिष्ट लज्जा के स्वामी थे। उन्हें संसार से यश-कीर्ति आदि किसी की इच्छा नहीं थी—वे परम निरीह थे और इस निरीह भाव से उन्होंने परीषह रूपी सेना को जीत लिया था।

जीव के लिये) निश्चय ही मोक्ष का मार्ग है।

प्रतिक्रमण

नासगं जं पमायस्स, मोक्ख-मग्गस्स सारयं ।
करणिज्जं दुसंझाए, आवस्सयं चउत्थयं ।१५५।

जो प्रमाद को नष्ट करने वाला है और जो मोक्षमार्ग को निष्कंटक श्रेष्ठ या सिद्ध बनाने वाला है, वह चौथा प्रतिक्रमण प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सन्ध्याओं में करना चाहिये ।

(काव्य)

गुणाण रूवं सरिऊण जीवो,
आलोयणं जोगगईइ किच्चा ।
जा वक्कया वारइ तं गुणंमि,
दोसं कयं तं अफलं सरित्ता ॥१५६॥

जीव गुणों के स्वरूप का स्मरण करके, अपनी मानसिक, वाचिक और कायिक क्रिया की गति का निरीक्षण करता है । वह गुणों से दूर जाने रूप जो योग की वक्रता है, या गुणों में जो दोष लगाया है, 'वे निष्फल हो'—उन्हें इस रूप में स्मरण करके, योगवक्रता को गुणों में मोड़ देता है (यह प्रतिक्रमण है)।

(अनुष्टुप्)

पुणोऽकरणचित्तीए, धरणं तु दढं मणे ।
तं पडिक्कमणं होइ, साहणाए विसोहणं ।१५७।

पुनः दोष नहीं करने की वृत्ति से साधना की विशोधि को

[illegible] प्रतिपादन है।

[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible] ॥५८॥

[illegible]

[illegible]

[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible] ॥५९॥

[illegible] है।

[illegible], [illegible]।
[illegible], [illegible]

[illegible] है।

[illegible]

[illegible], [illegible]।
[illegible] ॥५.३.६॥

[illegible] है। [illegible]

(अपने दुष्कृतों की निन्दा और गर्हा से) व्रतों के छिद्र (अतिचार) बंद हो जाते हैं और व्रतों की शुद्धि होती है।

पंचदश बोल

(दीक्षा हेतु नियम)

दीक्षा प्रयोगशाला है

(कारण)

दिक्खा हु अज्झत्त-पयोग-साला,
जाए गुणी साहग-अप्पमत्तो।
जीवस्स देहस्स य जो सिलेसो,
अच्चंतियं भंजइ तं सुही सो ॥१६२॥

दीक्षा अर्थात् साधुत्व को ग्रहण करना—अध्यात्म की प्रयोगशाला है। जिसमें मूलोत्तर गुण को धारण करने वाला प्रमाद से रहित सावधान वह साधक सुखानुभव करता हुआ, जो जीव और देह का एकत्व रूप अनादिकालीन वज्रलेप सा बंधन चल रहा है, उसे आत्यन्तिक रूप से = सदा के लिये तोड़ता है, वह उस श्लेप को तोड़ कर शाश्वत् सुख को प्राप्त करता है।

लक्ष्य-हेतु त्याग की प्रतिज्ञा

काया अहं संजम-जोगयं तं,
सुद्धं गहिस्सामि सिवो भविस्सं।
ण जाव दिक्खं लहिहामि ताव,
जं किंचि वत्थं पि न गण्हमि भंते ! ॥१६३॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]

[illegible]

पसत्थी

(प्रशस्ती)

सासणे पहुवीरस्स, धम्मदासो मुणीसरो ।
आयरिओ सिरीमंतो, होत्सु धम्म-धुरंधरो ॥१६६॥

अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर प्रभु के शासन में मुनियों में प्रधान श्री धर्मदासजी महाराज हो गये हैं। वे ज्ञानादि रत्नत्रयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न आचार्य-प्रवर थे। और वे धर्म की धुरा को धारण करने वाले थे।

तस्सीस-हरिदासस्स, अण्णये वि मुणीवरा ।
तवस्सी पढिया केइ, वत्तारा मुणि-पुंगवा ॥१६७॥

उनके कई विशिष्ट शिष्यों में एक श्री हरिदासजी नाम के मुनि भी थे। उनकी शिष्य-परम्परा में भी श्रेष्ठ मुनिराज हुए हैं। मुनियों में प्रधान कई तपस्वी थे, कई विद्वान थे और कई उत्तम वक्ता मुनिराज थे।

तेसिं पुज्जवरो सेट्ठो, णंदलाल-महामुणी ।
चाई लज्जू णिरावेक्खो, परीसह-चमू-जई ॥१६८॥

उनमें एक पूज्यवर श्री नन्दलालजी महाराज थे। वे श्रेष्ठ व्रती और महामुनि थे। उनकी त्यागवृत्ति महान् थी। वे संयमी के योग्य विशिष्ट लज्जा के स्वामी थे। उन्हें संसार से यश-कीर्ति आदि किसी की इच्छा नहीं थी—वे परम निरीह थे और इस निरीह भाव से उन्होंने परीषह रूपी सेना को जीत लिया था।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible], [illegible] य [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥[illegible]॥

ये गुरु श्री [illegible] महाराज के चरण-कमलों के [illegible] के समान श्री [illegible] महाराज हैं। आप कवि हैं अर्थात् आपने स्वयं ही कई [illegible] की रचना की है। आप [illegible] के कारण सुप्रसिद्ध हैं। आप [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] हैं। [illegible] से इस [illegible] के [illegible] कुछ [illegible] है।

[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥[illegible]॥

[illegible], [illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥[illegible]॥

[illegible] ।
[illegible], [illegible] ॥[illegible]॥

[illegible] और [illegible] के [illegible] "[illegible]" [illegible] है। [illegible] [illegible] के [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ([illegible]) के [illegible] के [illegible] और [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] के [illegible] के [illegible] [illegible] की